संपादकीय

भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली के विकास के साथ शिक्षार्थियों के मूल्यांकन की परीक्षा आधारित पद्धति औपनिवेशिक शासन की देन है। प्रो. कृष्ण कुमार अपने एक लेख में कहते हैं, ''सामाजिक संदर्भ में, इम्तिहान की व्यवस्था जनता के दिमाग में इस विश्वास को कायम करने का उद्देश्य पूरा करती थी कि अंग्रेजी राज न्यायपूर्ण और पूर्वग्रह से मुक्त है। इस विश्वास को कायम करने का काम परीक्षा व्यवस्था ने पूर्णतः अवैयक्तिक और निष्पक्षता की गारंटी देने वाली गोपनीयता की मदद से किया।'' परीक्षा प्रणाली की शुरुआत ने तयशुदा पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और परीक्षा की एकरूपता को शिक्षा व्यवस्था के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया। आजाद भारत में भी मूल्यांकन की यह व्यवस्था जारी रही क्योंकि श्रम बाजार में उपलब्ध रोजगार के स्तरीकृत अवसरों के वितरण के लिए छंटनी का यह एक मुफीद औजार साबित हुई।

आजाद भारत में परीक्षा पद्धति में बदलाव की मांग नई नहीं है। शिक्षा पर बने सभी नीतिगत दस्तावेजों ने शिक्षा में बेहतरी के लिए मूल्यांकन के प्रचलित तौर-तरीकों में बदलाव की सिफारिशें की हैं। सभी दस्तावेज रटन्त आधारित मूल्यांकन की इस प्रणाली की कटु आलोचना करते हैं। परीक्षा प्रणाली शिक्षार्थियों की समझ और कौशलों का मूल्यांकन करने में पूरी तरह सफल नहीं रही है क्योंकि यह शिक्षार्थियों की क्षमताओं को बहुत ही सीमित दायरे में आंक पाती है, शिक्षा के जरिए अर्जित ज्ञान एवं कौशलों के जीवन में उपयोग की गुंजाइश नहीं छोड़ती और इनका सर्वोच्च उपयोग परीक्षा में लिख देना मात्र होता है, प्रतिस्पर्द्धा पर टिकी यह पद्धति बच्चों में सामाजिकता के विकास के लिए घातक है, बच्चों और अभिभावकों में बैचेनी और दबाव को बढ़ाती है, बच्चों के व्यक्तित्व के अनेक पहलू अनछुए रहते हैं, परीक्षाओं में एकरूपता के चलते बच्चों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की विविधता और बच्चों की स्वभावगत खासियतों की अनदेखी होती है, यह सभी बच्चों को एक ही पैमाने पर खरा उतरने की मांग करती है, भविष्य में कुछ कर पाने की संभावनाएं सिर्फ परीक्षाओं के परिणाम पर सिमटकर रह जाती हैं और असफल होने वाले शिक्षार्थी असफलता के ठप्पे के साथ स्कूल छोड़ देने के लिए विवश होते हैं।

नीतिगत दस्तावेजों की आलोचना के बावजूद मुख्यधारा शिक्षा में पिछले करीब 60-65 सालों में मूल्यांकन के तरीकों में कोई बदलाव होते हुए दिखाई नहीं दिए। शिक्षा के अधिकार कानून, 2009 (आरटीई) ने सतत एवं समग्र मूल्यांकन (सीसीई) के विचार को रखते हुए मूल्यांकन में बदलाव को एक वैधानिक स्वीकृति प्रदान की है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कानून के आने के बाद शिक्षा में बदलाव की अधिकांश बहस और प्रयास मूल्यांकन में बदलाव के इर्द-गिर्द केन्द्रित हो गए हैं। आरटीई द्वारा सुझाए गए मूल्यांकन में बदलाव के प्रस्ताव का स्वागत करते हुए तमाम सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं इसमें रुचि लेते हुए एक मुहिम की तरह जुट गई हैं।

पिछले एक दशक में मूल्यांकन पर चली बहस से यह महसूस होता है कि मूल्यांकन संबंधी शब्दावली में काफी इजाफा हुआ है लेकिन वैचारिक स्पष्टता और जमीनी स्तर पर इसे क्रियान्वित कर पाने की स्थितियों को लेकर अभी भी काफी धुंधलका बना हुआ है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 और आरटीई के बाद से शैक्षिक बहसों में और स्कूल स्तर पर सतत एवं समग्र मूल्यांकन तथा रचनात्मक और योगात्मक आकलन जैसी शब्दावली का इस्तेमाल बेझिझक होने लगा है। स्कूलों के अनुभव बताते हैं कि कुछ स्कूलों ने सीसीई के नाम पर परीक्षाओं की आवृत्ति बढ़ा दी है और बच्चे एफए1,2,3... (फोरमेटिव असेसमेन्ट या रचनात्मक आकलन) और एसए1,2,3... (समेटिव असेसमेन्ट या योगात्मक आकलन) जैसी शब्दावली का प्रयोग करते हुए प्रत्येक सप्ताह कोई न कोई परीक्षा देने के लिए अभिशप्त हैं। हालांकि इसका असर बच्चों के सीखने के स्तरों पर होता नजर नहीं आ रहा है। यह समझने की आवश्यकता है कि तमाम बहसों और परियोजनाओं के बावजूद बच्चों के सीखने-सिखाने में गुणात्मक बदलाव क्यों नहीं आ रहा है?

हमें लगता है कि इस समस्या के मूल में मूल्यांकन की सही समझ का न होना है। ऐसा लगता है कि मूल्यांकन में बदलाव की वर्तमान बहस और लागू करने के लिए किए जा रहे प्रयासों में मूल्यांकन को शिक्षा के लक्ष्यों, सीखने के सिद्धान्तों और शिक्षा की संपूर्ण योजना से काटकर देखा जा रहा है। दूसरे शब्दों में, मूल्यांकन का शिक्षा के लक्ष्यों, सीखने के सिद्धान्तों और शिक्षा की संपूर्ण योजना से संगत संबंध बनता हुआ दिखाई नहीं दे रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि शिक्षा की संपूर्ण योजना में मूल्यांकन का केन्द्रीय स्थान है। मूल्यांकन सिर्फ शिक्षा के लिए ही नहीं है बल्कि किसी भी उद्देश्यपूर्ण गतिविधि के लिए जरूरी है। रॉल्फ डब्ल्यू. टायलर अपनी पुस्तक ''बेसिक प्रिंसिपल्स ऑफ करिक्युलम एण्ड इन्स्ट्रक्शन'' में पाठ्यचर्या और शिक्षण की योजना बनाने के लिए चार सवालों के जवाब की अपेक्षा अनिवार्य रूप से करते हैंः (1) स्कूल किन शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश करें? (2) इन उद्देश्यों के लिए कौनसे शैक्षिक अनुभव कारगर होंगे? (3) ये शैक्षिक अनुभव किस प्रकार सार्थक रूप से नियोजित किए जा सकते हैं? और (4) हम कैसे सुनिश्चित कर सकते हैं कि ये शैक्षिक उद्देश्य वास्तव में पूरे हो रहे हैं?

इनमें से अन्तिम सवाल मूल्यांकन से जुड़ा हुआ है। टायलर मूल्यांकन को शिक्षा की समग्र योजना का एक हिस्सा मानते हुए शैक्षिक लक्ष्यों की दिशा में प्रगति का जायजा लेने के एक साधन के तौर पर देखते हैं। अर्थात् मूल्यांकन के जरिए ही यह पता लगाया जा सकता है कि शैक्षिक लक्ष्यों की दिशा में प्रगति हो रही है अथवा नहीं। इस मायने में मूल्यांकन शिक्षा का अभिन्न हिस्सा है। और किसी भी शैक्षिक गतिविधि के लिए जरूरी है। इसीलिए शिक्षकों एवं स्कूल प्रबंधन के लिए नियमित रूप से यह जानना जरूरी हो जाता है कि स्कूल शिक्षा के लक्ष्यों की ओर कितना बढ़ रहा है।

सीसीई का विचार परंपरागत मूल्यांकन पद्धति में किए जाने वाले शैक्षणिक क्षेत्रों या पाठ्यपुस्तक केन्द्रित मूल्यांकन की सीमाओं को तोड़ते हुए इसे बहु-आयामी बनाने की पेशकश करता है। यह प्रस्तावित करता है कि मूल्यांकन का मकसद शिक्षार्थियों के सीखने में मदद करना है न कि उन्हें पास-फेल की श्रेणियों में बांटना। सीसीई 'सीखने के आकलन' के स्थान पर 'सीखने के लिए आकलन' के विचार को सामने रखता है। सीसीई के जरिए शिक्षक अपने शिक्षण की रणनीतियों में बदलाव करते हुए शिक्षार्थियों के बेहतर सीखने के अवसर प्रदान कर सकते हैं और शिक्षार्थियों के सीखने में रोज-ब-रोज पेश आने वाली समस्याओं को चिह्नित कर उन्हें फीडबैक मुहैया करा सकते हैं।

मूल्यांकन पर भारत में चल रही वर्तमान बहस और प्रयोगों की एक विडंबना यह प्रतीत होती है कि सीसीई जैसे विचार को कक्षा-कक्षीय प्रक्रियाओं और शिक्षण के तरीकों में बगैर बदलाव किए परंपरागत तौर-तरीकों में ढालने की कोशिश की जा रही है। इसकी वजह से मूल्यांकन में बदलाव की संभावनाएं बहुत ही क्षीण दिखाई देती हैं। यदि सीसीई को धरातल पर सफल तरीके से लागू करना है तो इसके लिए शिक्षकों में शिक्षा की समग्र समझ विकसित करनी होगी। इसके साथ ही शिक्षा के लक्ष्यों, सीखने के सिद्धान्तों और मूल्यांकन की संगत रूपरेखा तैयार करनी होगी। स्कूलों में भी शिक्षण की उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करना होगा।

शैक्षिक मूल्यांकन पर केन्द्रित यह विशेषांक मूल्यांकन संबंधी बहस को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का एक प्रयास है। यह अंक तीन खण्डों में बंटा हुआ है। पहला खण्ड ''शैक्षिक मूल्यांकनः प्ररिपेक्ष्य और रुझान'' मूल्यांकन की बहस को समझने के लिए एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है कि मौजूदा सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में मूल्यांकन में बदलाव के सवाल को किस तरह समझा जाए, हमारे नीतिगत दस्तावेज इस बहस को किस तरह संबोधित करते हैं और मूल्यांकन की वर्तमान बहस क्या हैं। दूसरा खण्ड ''शैक्षिक मूल्यांकनः सोच की दिशा'' मूल्यांकन में बदलाव के लिए वैचारिक आधार प्रदान करते हुए दिशा देने का काम करता है। इस खण्ड के लेख मुख्यतः शिक्षा के लक्ष्यों, पाठ्यचर्या और सीखने के सिद्धान्तों से मूल्यांकन के संगत तौर-तरीके विकसित करने की मांग करते हैं। तीसरा खण्ड ''शैक्षिक मूल्यांकनः जमीनी अनुभव'' धरातल पर किए जा रहे प्रयोगों के अनुभवों को सामने रखता है। इस खण्ड में छोटे स्तर पर संचालित स्कूलों से लेकर शिक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप के लिए किए गए प्रयोगों के अनुभव शामिल हैं। इस खण्ड के लेख विचार और क्रियान्वयन के मध्य की चुनौतियों से भी पाठकों को रूबरू कराते हैं। ◆